बीसवीं सदी के अंतिम दशक की हिंदी कविता में किसान

डॉ.पंढरीनाथ शिवदास पाटिल, गंगामाई महाविद्यालय, नगाँव, धुले, महाराष्ट्र

किसान शब्द सुनते ही हमारे मानसपटल पर एक चित्र उभरता है जिसमें कि क पसीने से लथपथ एक व्यक्ति भूमि के किसी टुकड़े पर अपने हीरा और मोती बैल समेत हल चला रहा है, धूप में फसल की कटाई कर रहा है या फिर माथे पर फसल का बोझ अथवा बोरा लिए हुए जा रहा है, नहीं तो फिर ओला, आंधी, अनावृष्टि, अतिवृष्टि या जंगली जानवरों द्वारा नष्ट हुई फसल को माथे पर हाथ दिए देवख रहा है। परंतु किसान का जीवन इतने में ही सीमित नहीं होता। किसान का जीवन जितना व्यक्त होता है, उससे कहीं ज्यादा अव्यक्त रह जाता है। वह जीवन की परिस्थितियों से जितना बाहर लड़ता है उससे ज्यादा अंतर्मन के द्वंद्व से जूझता है। समाज में किसान अथवा उसके परिवार से लोक-लाज, मर्यादा, मनुष्यता, ईमानदारी, सहयोग, संबंध निर्वहन आदि गुणों का अनिवार्य समावेश पूर्वापेक्षित है। किसान और उसका जीवन अपने आप में एक स्वतंत्र संस्कृति है और इसीलिए इतने बडे दायित्व निर्वहन का सामर्थ्य भी किसान में ही है। वह भौतिकतावाद के रंग में आज भी उस सीमा तक नहीं रँग पाया जितना समाज का अन्य वर्ग जुड़ाव महसूस करता है। किसान का हल बैल-खेत से संबंध तो स्वाभाविक और जगजाहिर है लेकिन फावड़े से जैसा भावनात्मक संबंध मोती मुनिया के काव्य-संग्रह 'निमिष में' दिखता है, वह अपनत्व अत्यंत मनमोहक है-तुम ही तो हो./जिसे अपने सुकुमार बच्चे-सा/कंधों पर बिठा/खेत में ले जाऊँ / वापस लाऊँ-/ दिनभर तुमसे कड़ी मेहनत करवाऊँ (अपना पेट पालने)" फावड़े के प्रति ऐसा आत्मीय भाव क्या उस किसान को मनुष्यता के उच्च सोपान पर नहीं पहुँचाता जो फावड़े से पुत्रवत स्नेह करता है?

कृषि जीवन तथा कृषक की अनेक छवियों हिंदी कविता में चित्रित हैं। प्रायः चित्रण के केंद्र में किसान के अलग-अलग प्रकार तथा स्वरूप सामने आते हैं क्योंकि भूमि, उसके प्रकार तथा सामर्थ्य और सुविधा के संबंध में उनमें अनेक स्तरीय भेद हैं। जमीन के माप के आधार पर यह विभाजन बड़े किसान, मध्यम किसान, लघु किसान, सीमांत किसान एवं भूमिहीन किसान के रूप में होता है। यह भूमिहीन किसान उपस्थित तो रहता है लेकिन किसान भी इसकी नगण्यता को ही स्वीकृति देते हैं। रचनाकारों ने अपनी कृति में जिन कृषकों का चित्रण किया है, उनमें बहुधा लघु तथा सीमांत किसान हैं। भगवत रावत ने अपनी रचना 'सच पूछो तो' में 'पेड़ों की आवाज़' शीर्षक कविता में इस प्रकार व्यंग्य किया है- "धान और गेहूँ के पौधे / ऐसी मस्ती में लहलहा रहे हैं / कि भूखे पेटों पर तरस खा रहे हैं 2

कविता में यह खेत विज्ञापन का हिस्सा है जिसमें किसान की बेटी की रंग-बिरंगी चुनरी हवा में उड़ रही है और वह किसी नई खाद के गुण गा रही है। विज्ञापन बाजार की रणनीति है जो उन्हें भी सपने दिखाता है जो उसे पाने की योग्यता नहीं रखते। जहाँ किसान मौसम और गरीबी का मारा हो, वहाँ ऐसे विज्ञापन उन लघु तथा सीमांत किसानों के ऊपर किया गया एक भद्दा मजाक नहीं तो और क्या है? लघु और सीमांत किसानों का प्रायः मजदूर के रूप में रूपांतरित होना अनवरत नैरंतर्य धारण किए हुए है। वे कभी गाँव छोड़ जाते हैं तो कभी गाँव में रहकर ही अपमानित होते हुए भी मजदूरी करते रहते हैं। हिमांशु जोशी की रचना 'अग्निसंभव' में एक ऐसे ही किसान परिवार का चित्रण है जिसने कृषिकार्य के संपन्न होने में किसी न किसी रूप में योगदान तो दिया, परंतु वह पूरा परिवार किसी बड़े किसान के खलिहान में बिखरे हुए दाने बीनकर एक पहर की रोटी की जुगत में लगा है-

"सुबह से भूखे / अनाज के दाने बीन रहे हैं / मैं एक अन्न का दाना उठाकर देखता हूँ / उसमें उनके नाम की मुहर लगने से / रह गई है"3

भारतीय किसान समाज का वह अंग है जो कभी उऋण नहीं हो पाता है। शास्त्रों के अनुसार मनुष्य तीन ऋण क्रमशः देव, ऋषि तथा पितृ ऋण के साथ जन्म लेता है। किसान इस ऋणत्रय के अलावा जीवनयापन के लिए भौतिक जगत से कर्ज़ लेता है। यदि फसल अच्छी नहीं हुई तो एक कर्ज़ को भरने के लिए दूसरा कर्ज़ लेता है। किसान और कर्ज़ का संबंध इतना प्राचीन है कि उससे मुक्त होने के लिए प्रायः जमीन बिक जाती है-

"जमीन / बिक जाने के बाद भी / पिता के सपनों में / बिछी रही रात भर / वह जानना चाहती थी/हल के फाल का स्वाद / चीन्हना चाहती थी / धँवरे बैलों के खुर / वह चाहती थी / कि उसके सीने में लहलहाएँ / पिता की बोयी फसलें""

किसान इतना बेबस और लाचार हो जाता है कि उसको इस पेशे का त्याग करना ही उचित जान पड़ता है। रमेश माहेश्वरी की कविता 'तुम बडे वो हो..' इस परिस्थिति को शब्द देती है-

"जैसे तैसे रात दिन एक कर / गाह कर, दावन कर, उड़ा कर अन्न तैयार करते हैं / और तैयार होते ही आ जाते हैं सारे लेनदार / पटवारी सहकारी, सरकारी, बैंक, साहूकार, दुकानदार // लेनदारी का हिसाब उनका, अनाज का भाव उनका / तौलने वाले बांट, तराजू और हाथ, सब उनके / हम तो रह जाते हैं फकत गवाह / जैसे तैसे जितना कुछ बच पाता है/ उसे ही घर की कुठिया में भरकर कर लेते हैं सबर"

'भारत एक कृषिप्रधान देश है'- इस उक्ति को सत्ता ने बहुत अर्थवत्ता प्रदान की है लेकिन कभी-कभी किसान के समक्ष जब कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता तो वह अपने जीवन को ही समाप्त कर लेता है। राजेश जोशी की कविता 'इस आत्महत्या को अब कहाँ जोहूँ' इस पर स्पष्ट प्रकाश डालती है-

"भारत एक कृषि प्रधान देश है/ दुबारा उसे पढ़ने को जैसे ही आँखें झुकाता हूँ/ तो लिखा हुआ पाता हूँ / कि पिछले कुछ बरसों में डेढ़ लाख से अधिक किसानों ने / आत्महत्या की है इस देश में / भयभीत होकर कागज़ पर से अपनी आँखें उठाता हूँ/ तो मुस्कुराती हुई दिखती है हमारी सरकार / कोई शर्म नहीं किसी की आँख में/ दुःख या पश्चाताप की एक झाँई तक नहीं चेहरे पर |

किसान जीवन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक 'महिला किसान' जिसकी अनुपस्थिति से कृषि संस्कृति का स्वरूप अत्यंत मलिन हो जाता है उसकी सुध भी दीर्घकाल तक नहीं ली गई। आज से कुछ वर्ष पूर्व तक या फिर यों कहें कि अधिकांशतः आज भी भारतीय समाज में यदि पति किसान है तो पत्नी स्वाभाविक रूप से किसान ही है। कृषि के अनेक कार्य जैसे बीज तैयार करना, रोपाई, निराई, कटाई, सफाई तथा भंडारण आदि कार्य न जाने किस युग से औरतें करती आई हैं। विडंबना है कि स्त्री की बहुआयामी प्रतिभा को ईश्वर प्रदत्त मातृत्त्व और प्रेम के वृत्त में सीमित करने के अलावा और कोई भी पहचान देना उचित नहीं समझा गया-

"घुटनों तक धोती उठाए / पीठ पर बोझा लटकाए / धान रोपती कतार औरतों की"

महिला किसान अपने घर के सारे काम तो महिला होने के नाते करती ही है, कृषि संबंधित सभी कार्य भी करती है। रमेश माहेश्वरी ने अपने काव्य-संग्रह 'बिंदु और आकाश' में महिला किसान का यह पक्ष 'मैंने देखा है' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया है-

"सुबह मुंह अंधेरे उठकर / पशुओं को संभालते, पशुशाला सफाई करते, / गोबर मिट्टी पानी में लथपथ हाथ पैर / धो धाकर रोटी बनाते / और फिर खेत की ओर जाते ।/ मैंने देखा है उसे / कड़कड़ाती ठंड में खेतों में पानी देते / कंधे पर दुली टाँग कर हल के साथ चलते / अनाज बोते, गुनगुनाते, मुस्कुराते । "

निजी उद्योग में कार्यरत कर्मचारी जिस कार्य के लिए अतिरिक्त वेतन प्राप्त करते हैं उससे कहीं अधिक कठिन कार्य महिला किसान सदियों से बिना किसी पगार के तथा बिना किसी पर एहसान जताए करती आई है। इसके बदले उसने कभी अतिरिक्त सम्मान भी नहीं माँगा-

"रोटी बनाना, घरवालों बच्चों को खिलाना, सुलाना / यह तो उसका नियमित कार्य है ही / पर वह थकती नहीं / काम का बोझ नहीं कर्त्तव्य समझ कर करती है/काम पुरुष से सवाया करती है / पर सम्मान उसी का सवाया करती है।"

20वीं सदी का अंतिम दशक और भारत में भूमंडलीकरण के आगमन को लेकर यह भरोसा दिलाया गया कि बहुद्देशीय उद्योग के स्थापित होने से किसानों के जीवन में अप्रत्याशित बदलाव आएगा-

"खुशबू इस खबर की फैल गई सब ओर / गाँव खुशहाल होगा... किसान मालामाल होगा/ रोशन होगा माहौल"10

ठीक वैसा ही वादा जैसा तमाम असफल सरकारी योजनाओं के लागू करने से पूर्व किया जाता रहा है, परंतु 'दूध पीते बच्चे नहीं हैं हिंदुस्तानी गाँव' कविता के एक अनपढ़ किंतु अनुभवी ताऊ इस षड्यंत्र से भलीभाँति परिचित हैं-

"उनका कुछ तो स्वार्थ होगा / हमारे खेतों के ताज़ा आम / बोतलों में भरके. .. बासी करके / हमी को पिलाएँगे / पैसे कमाएँगे... अपनी चलाएँगे "11

यह षड्यंत्र अपनी सफलता का यशोगान हमारे सामने कर रहा है। उस वृद्ध की चेतावनी आज हमारे समक्ष फल-फूल रही है। उनके उत्पादों के मूल्य खरगोश की गति को धारण किए हुए हैं और किसानों द्वारा उगाया गया कच्चा पदार्थ कछुए की गति को। किसान की सादगी और जो प्राप्त है वही पर्याप्त है की आदत ने उसे अपने खिलाफ रचे गए षड्यंत्रों से अनभिज्ञ रखा। ऐसी ही साजिश का शिकार किसान हरजेंद्र चौधरी की कविता 'होरी खुश है' (दो) में उपस्थित है-

"होरी खुश है... आशावान है... संतुष्ट है / बहुत-सी बातें नहीं जानता / जिस दिन जान जाएगा / उस दिन न जाने क्या होगा... "12

भूमंडलीकरण तथा उदारीकरण ने भारतीय समाज को एक और वरदान दिया जिसे शहरीकरण कहा गया। यह मूलतः विस्थापन का सबसे बड़ा कारण बना। कृषि की अप्रत्याशित हानि-लाभ व्यवस्था के कारण ही वैज्ञानिक युग में भी विस्थापित जनमानस गाँव की ओर आकर्षित नहीं हो पाया। शहरों का अमानवीय जीवन जीते हुए भी आखिर क्यों किसानों के बेटे-बेटियाँ शहर में जीवनयापन करने को अभिशप्त हैं। श्याम गोविंद ने अपने काव्य संग्रह 'सुरंग जैसी अवधि' के 'श्रीमती तरला सिन्हा' शीर्षक कविता में विस्थापन की त्रासदी को इस प्रकार व्यक्त किया है-

'खेत जुडे होते हैं गाँवों से / और गाँवों से भागकर आदमी / शहर चला जाता है/ जिंदगी बन जाती है सिर्फ बकवास " 13

इतनी अजनबियत और एकाकीपन का दंश झेलते हुए, मन में घर से दूर होने की टीस लेकर भी गाँव का आदमी शहर को स्वीकार कर रहा है तो परिस्थितियाँ और कारण स्पष्ट हैं। कुछ ऐसा जिसकी आवश्यकता मनुष्य को परिवार और समाज के निर्वहन के लिए है और उसकी व्यवस्था गाँव में नहीं हो पा रही है तथा दूसरा यह कि लोग भौतिकतावाद से ओतप्रोत होकर अपनी आवश्यकताओं को निरंतर बढ़ाते जा रहे हैं। आवश्यकताएँ इतनी बढ गईं हैं कि शहर और शहरी लोग रात भर जागते हैं, काम करते हैं, नए-नए सामान बनाते हैं। संपत्ति और उपभोग की हवस लगातार अपना विस्तार कर सब कुछ निगलने को तैयार है। इससे एक तरफ इंसान जीने के लिए मर-मरकर काम कर रहा है तथा दूसरी तरफ प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन भी हो रहा है। परिवर्तन का यह स्वरूप रमेश माहेश्वरी की कविता 'चलते रहना में इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है-

"शहर की जिंदगी सब कुछ निगल गई है / जंगल पहाड़ नदियाँ खेत / सभी कुछ तो खा रही है आदमी की भूख / बढ़ रहा है आदमी और उसकी हवस /बढ़ रहे हैं शहर/झुग्गियाँ, गंदी बस्तियाँ, सिकुड़ रहे है गाँव / कारखानों का दुःशासन / प्रकृति का कर रहा है सतत चीरहरण / मानव भी रह गया है महज कच्चा माल 14

बीसवीं सदी के अंतिम दशक की शुरुआत में ही भारत में उदारीकरण पूर्णरूपेण लागू किया गया। विश्व के बड़े उद्यमियों के लिए यह एक सुनहरा अवसर था। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत में औद्योगिकीकरण से निजी क्षेत्रों में रोजगार विकसित हुआ। पढ़े-लिखे युवाओं के लिए नए क्षेत्र एवं अवसर उत्पन्न हुए। जहाँ उद्योग स्थापित हुए, वहाँ विकास शुरू हुआ और इस विकास ने धीरे-धीरे शहरों को या तो विस्तार दिया या फिर नए शहरों को जन्म दिया। किसान परिवारों के युवा भी नौकरी की ओर आकर्षित हुए और पलायन की स्थिति ने ज़ोर पकड़ना शुरू किया। कृषि के आधुनिक उपकरण खरीदने का सामर्थ्य गिने-चुने बड़े किसानों के पास ही था। पारंपरिक खेती में पूरे परिवार को शामिल होना पड़ता था और परिवार के ऐसे सदस्य जो मेहनत का कार्य करने में सक्षम थे, उन्होंने शहर की ओर रुख कर लिया। मध्यम, लघु तथा सीमांत किसान परिवारों पर इस परिस्थिति का सीधा असर पड़ना शुरू हुआ और उन्होंने या तो खेती को सीमित कर लिया या फिर इससे किनारा कर लिया। कोई अन्य विकल्प नहीं होने के कारण कभी जमींदारों तो कभी सूदखोरों की प्रताड़ना एक तरफ तो खेती से होने वाली अप्रत्याशित हानि-लाभ एक तरफ।

के पश्चात भारतीय कृषक समाज के सामान्य जीवन में अनेक परिवर्तन घटित हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमंडलीकरण तथा उदारीकरण के भारत आगमन के पश्चात भारतीय कृषक समाज के सामान्य जीवन में अनेक परिवर्तन

घटित हुए । कहा जा सकता है कि एक मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। ऐसी परिस्थितियों के चित्रांकन को न सिर्फ गद्य साहित्य ने अपितु हिंदी कविता ने भी निष्पक्ष होकर मुखर अभिव्यक्ति दी है और साथ ही स्पष्ट किया है कि धरातल पर वस्तुस्थिति सरकारी अभिलेखों से बहुत भिन्न है। शासन और कृषक के मध्य उपस्थित रिक्तता को समाप्त किए जाने के प्रयास आज भी अपेक्षित हैं, जिससे खेत, किसान तथा कविता तीनों के चेहरे पर हरियाली आए।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. भुवानिया, मोती, निमिष में, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, 1993, पृष्ठ 60
2. रावत, भगवत, सच पूछो तो, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1996, पृष्ठ 19
3. जोशी, हिमांशु, अग्निसंभव, दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, 1984, पृष्ठ 28
4. कोईरी, डॉ. मृत्युंजय, किसानी कविताएँ, ग्रेटर नोएडा, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2020, पृष्ठ 142
5. माहेश्वरी, रमेश, बिंदु और आकाश, भोपाल, मध्यप्रदेश लेखक संघ, 1997, पृष्ठ 73
6. कोईरी, डॉ. मृत्युंजय, किसानी कविताएँ, ग्रेटर नोएडा, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2020, पृष्ठ 131
7. चौधरी, हरजेंद्र, फसलें अब भी हरी हैं, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2002, पृष्ठ 34
8. माहेश्वरी, रमेश, बिंदु और आकाश, भोपाल, मध्यप्रदेश लेखक संघ, 1997, पृष्ठ 36
9. वही, पृष्ठ 37.
10. चौधरी, हरजेंद्र, फसलें अब भी हरी हैं, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2002, पृष्ठ 28
11. वही, पृष्ठ 28.
12. वही, पृष्ठ 43
13. गोविंद, श्याम, सुरंग जैसी अवधि, दिल्ली, पराग प्रकाशन, 1996, पृष्ठ 33.
14. माहेश्वरी, रमेश, बिंदु और आकाश, भोपाल, मध्यप्रदेश लेखक संघ, 1997, पृष्ठ 22-23.